ग्रामीण संकट के बारे में बात करने की आवश्यकता

साभार : द हिन्दू
(14 सितंबर, 2017)

फिरोज वरूण गांधी
(सांसद, भाजपा)

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-III (कृषि, भारतीय अर्थव्यवस्था) के लिए महत्वपूर्ण है।

किसानों की स्थिति दयनीय है, इसलिए हमें अपनी नीतियों में सुधार लाने की आवश्यकता है।

एक सदी पहले, बिहार के चंपारण जिले के किसानों को तिनकठिया प्रणाली के तहत नील की खेती करने के लिए अपनी जमीन का 15% भाग देना पड़ा था। एक बार लगाए जाने के बाद, किसानों को विभिन्न प्रकार से जबरन वसूली करने वाले उपकार या अबाब द्वारा इनसे कर वसूला जाता था। इसके बाद इनके मन में विद्रोह ने जन्म लिया, लेकिन ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा इसे कुचल दिया जाता था, जब तक दक्षिण अफ्रीका से एक बैरिस्टर का आगमन नहीं हुआ था। फिर भी, महात्मा गांधी द्वारा किसानों के शोषण के खिलाफ लड़ाई लड़े जाने के एक सदी के बाद भी भारत का कृषि समुदाय अब भी कई जटिल समस्याओं का सामना कर रहा है, जो कि एक गंभीर समस्या है।

भारत में सीमांत किसान बहुत ही जटिल और निर्णय-गहन प्रक्रिया का सामना करते हैं। किसानों को फसलों की पसंद (वार्षिक या अल्पावधि) से शुरू करते हुए खेती के उनके समय के आधार पर विभिन्न निर्णय लेने होते। इसके अलावा, फिर कृषि इनपुट, पानी की उपलब्धता, मृदा उपयुक्तता और कीट प्रबंधन की बढ़ती कीमतें हैं। ये सभी कारक सीमांत किसानों के लिए आर्थिक लाभ की एक संकीर्ण खिड़की का निर्माण करते हैं। इसलिए एक गलत निर्णय इनपर कहर बरपा सकता है।

ऋण स्तर

यह अनिश्चितता ग्रामीण ऋण स्तरों में परिलक्षित होती है। पंजाब विश्वविद्यालय के एक अध्ययन में यह पता चला है कि पंजाब में 10 हेक्टेयर से अधिक भूमि वाले बड़े किसानों के पास 0.26 रुपये का ऋण-अनुपात है, जबकि मध्यम किसानों, 4-10 हेक्टेयर और अर्ध-मध्यम किसानों के लिए 2-4 हेक्टेयर, यह आंकड़े 0.34 था और ये सभी वहां योग्य लगते हैं। हालांकि, छोटे किसान जिनके पास 1-2 हेक्टेयर है या सीमांत किसान जिनके पास एक हेक्टेयर से कम भूमि मौजूद है, ऋण का अधिक से अधिक बोझ का सामना करना पड़ता है, जहाँ ऋण-से-आय का अनुपात 0.94 और 1.42 क्रमशः है, जिनके 50% से अधिक ऋण गैर-बैंकिंग स्रोतों से हैं।

देखा जाये तो, किसानो के पास औसत भूमि आकार वर्ष 1971 में 2.3 हेक्टेयर हुआ करता था, जो अब घटकर 1.13 हेक्टेयर में तब्दील हो चुका है, साथ ही औसत इनपुट कीमतों में और खेती की लागत में भी वृद्धि हुई है। आमतौर पर एक किसान धान की प्रति हेक्टेयर प्रति माह 2,400 रुपये कमाता है और गेहूं के प्रति हेक्टेयर प्रति माह 2,600 रुपये कमाता है, जबकि खेतिहर मजदूर प्रति महीने 5,000 रुपये से भी कम कमा पाते हैं। वास्तविक कृषि मजदूरी 1991 और 2012 के बीच 2.9% की औसत वार्षिक वृद्धि दर से बढ़ी है, 2002 और 2007 के बीच कृषि मजदूरी में गिरावट आई है। प्रभावी रूप से, माध्यमिक और तृतीयक क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर तलाश करते हुए 2004-05 और 2010-11 के बीच लगभग 30.5 मिलियन लोगों ने खेती छोड़ दी। 2011 में, योजना आयोग ने अनुमान लगाया था कि 2020 तक कृषि कार्यबल का आकार 200 मिलियन से भी कम हो जाएगा।

इस तरह की परिस्थिति के कारण किसान आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहे हैं। किसानों की आत्महत्याओं का मुख्य कारण राज्यों में सीमित सिंचाई और अस्थिर वर्षा हैं, जिनमें 2015 में 87.5% किसानो द्वारा आत्महत्या करना शामिल था। आंकड़ों के अनुसार अब तक 3,21,428 से अधिक किसान पिछले 20 सालों में आत्महत्या कर चुके हैं।

देखा जाए तो, महाराष्ट्र के बड़े किसानों के पास आधुनिक पंपों तक पहुंच होती है, जो बड़ी मात्रा में कृषि के लिए पानी तक पहुंच आसान बना देती है, लेकिन इस वजह से छोटे और सीमांत किसानों के पास कुछ भी नहीं बचता है। उर्वरक और कीटनाशक की कीमतों में भी बढ़ोतरी हुई है, जिससे सीमांत किसानों ने जैविक तरीकों को अपनाना शुरू कर दिया है। उच्च उपज देने वाली बीज की किस्मों की सीमित उपलब्धता और उच्च लागत होने के कारण कृषि उत्पादकता भी बाधित होती है। ऐसी बाधाओं को देखते हुए, किसानों को फसल विविधीकरण के लिए सीमित दायरे ही उपलब्ध होते हैं, मुख्य रूप से गेहूं और चावल जैसे मुख्य फसलों पर ध्यान केंद्रित करना, जहां सरकार उत्पादन के लिए कीमत की गारंटी देता है और फसल के बाद बुनियादी ढांचे की उपलब्धता की पेशकश करता है।

ऋण माफी राजनीति

आजादी के बाद से विभिन्न रूपों में संस्थागत समर्थन प्रदान किया गया है। 1982 में स्थापित, नेशनल बैंक फॉर एग्रीकल्चर एंड रूरल डेवलपमेंट ने ट्यूब-विहिरी सिंचाई, खेत मैकेनाइजेशन और अन्य सहायक गतिविधियों के लिए वित्तपोषण का समर्थन उपलब्ध कराने की मांग की थी। वर्ष 1990 में देशव्यापी कृषि ऋण माफी का परिचय ग्रामीण ऋण के प्रावधान पर एक हानिकारक प्रभाव था, जिससे किसानों के बीच ऋण अनुशासन पैदा करने और ग्रामीण ऋण वृद्धि में कमी की ओर अग्रसर होने पर अल्पकालिक उपशामक प्रदान किया गया था।

2004-05 के केंद्रीय बजट में कृषि ऋण को दोगुना करने की मांग की गई थी, जबकि 2% ब्याज अनुदान 2006 में प्रदान किया गया, जिससे किसानों को किसान क्रेडिट कार्ड (केसीसी) ऋण 7% प्रति वर्ष (3 लाख तक) तक प्राप्त करने की अनुमति मिल गई। लोकसभा चुनाव से ठीक पहले, वर्ष 2009 में एक और कृषि ऋण माफी मंजूर की गई थी। 2011 में, सरकार ने केसीसी ऋण पर तत्काल

भुगतान करने वाले किसानों के लिए एक और 3% ब्याज अनुदान प्रदान किया। हाल ही में, उत्तर प्रदेश सरकार की कृषि ऋण माफी योजना महाराष्ट्र, पंजाब और कर्नाटक में दोहराई गई है, जो भारत के सकल घरेलू उत्पाद का 0.5% तक का अनुमान लगाया गया है। इसी तरह की मांग मध्य प्रदेश, राजस्थान और हरियाणा में बढ़ रही है। छोटे और सीमांत किसानों को निश्चित रूप से सरकार से अधिक समर्थन प्राप्त होता है। हालांकि, भारत की कृषि नीति ने ऐतिहासिक रूप से किसानों के बीच एक औपचारिक ऋण संस्कृति के निर्माण को बिगाड़ दिया है। अब प्रश्न यह उठता है कि जब अगले चुनाव में एक और कृषि ऋण छूट दिए जाने की संभावना है ही तो फिर कोई भी किसान अपने ऋण का भुगतान जल्दी क्यों करना चाहेगा? ऐसी योजनाएं किसानों को अपनी क्षमता से परे जोखिम वाले उपक्रमों को लेने के लिए भी उत्साहित कर सकती हैं।

आदर्श रूप से, भारत में ग्रामीण संकट नहीं होना चाहिए था। हमारे पास दुनिया में कृषि योग्य भूमि का दूसरा सबसे बड़ा हिस्सा है। फिर भी, भूमि की सिंचाई 35% से कम ही हो पाती है और शेष भाग वर्षा के उतार-चढ़ाव पर निर्भर करता है।

किसानों की मदद करना

भारत के छोटे और सीमांत किसानों को एक और कृषि ऋण माफी की आवश्यकता होगी। हालांकि, यह भविष्य में जारी नहीं रह सकता है, इसलिए उनकी दुर्दशा को कम करने के लिए अन्य उपायों पर ध्यान देना होगा। कृषि उपकरणों, उर्वरकों और कीटनाशकों की खरीद के लिए अधिक सब्सिडी बढ़ाई जा सकती है, जबकि राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के माध्यम से चिकित्सा बीमा कवरेज का विस्तार किया जा सकता है। इसके अलावा, महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम के दायरे में वृद्धि की जा सकती है। अपने स्वयं के क्षेत्रों पर कृषि करने के लिए सीमांत किसानों को भुगतान करने की अनुमति देकर उनकी इनपुट लागत को कम किया जा सकता है। इससे उनकी शुद्ध आय में वृद्धि किया जा सकता हैं।

अंत में, हमें ग्रामीण संकट पर एक राष्ट्रीय वार्तालाप की आवश्यकता है। चंपारण सत्याग्रह के विपरीत, राष्ट्र का ध्यान इस मुद्दे पर कम है। हमें एक पूरे सप्ताह संसद में बैठकर स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट पर चर्चा करनी चाहिए और निर्णय लेना चाहिए, कि भारत की कृषि किस दिशा में जानी चाहिए। भारत के किसानों के लिए सहानुभूति और भू-कृषि की वास्तविकता का सच्चा आकलन के साथ, हमें भारतीय कृषि के लिए सही विकल्प बनाना होगा।

इससे संबंधित तथ्य

ऋण माफी की चिंतायें

- जहाँ तक ऋण माफी का प्रश्न है तो एनपीए (NPAs) ऐसी नीतियों का परिणाम है, जो कि किसानों की आय और ऋण चुकाने की क्षमता को मोड़ देते हैं।
- किसान पिछले साल की कीमतों के आधार पर फसलों का चयन करते हैं। जब किसान बड़ी संख्या में किसी फसल को उगाते हैं, जैसाकि 2016 में तुर (Tur) की फसल के साथ देखा गया था, तब अधिक उत्पादन के कारण कीमतें नीचे गिर जाती हैं। यह एक ऐसी असंगत स्थिति है, जब किसानों का संकट तथा अधिशेष-उत्पादन दोनों साथ-साथ उत्पन्न होते हैं। सरकार इन अधिशेषों को अवशोषित करने की स्थिति में नहीं है, क्योंकि इस तरह की कोई व्यवस्था देश में नहीं है।
- अब मध्य प्रदेश में जो निर्णय लिया गया है, जहां व्यापारियों को उच्च मूल्य पर सोयाबीन खरीदने के लिये बाध्य किया गया है, उससे अलग प्रकृति की समस्याएं पैदा होती हैं। इस तरह एमएसपी और खरीद का अभाव दोनों ने देश के कई हिस्सों में वर्तमान संकट को आगे बढ़ाने का कार्य किया है।
- **ऋण माफी की अवधारणा दोषपूर्ण है :** ऋण माफी की अवधारणा स्वाभाविक रूप से दोषपूर्ण है। किसी भी ऋण को क्षमा करना एक नैतिक संकट पैदा करता है, क्योंकि यह उन लोगों को दंडित करता है, जो आज्ञाकारी हैं। इससे किसान को एक प्रतिकूल प्रोत्साहन मिलता है कि भविष्य में फिर इसी तरह की छूट मिल सकती है। इस तरह कृषि ऋण माफी योजना एक ऐसा संसर्ग बन जाती है, जिसे सभी राज्यों के किसान उसी अनुदान की मांग करने लगते हैं और यह अंत में राज्य वित्त के लिये भयावह हो जाता है। तो फिर इसका क्या हल हो सकता है? एमएसपी को खरीद के साथ जोड़ा जाना चाहिए, जिसकी एक सीमा होनी चाहिये अन्यथा बाजार में फिर विकृति उत्पन्न होगी।

कृषि क्षेत्रों में गहराते संकट के कारण :

- बहुराष्ट्रीय कंपनियों, साहूकारों, महाजनों के हाथ अपनी जमीन गिरवी रखने एवं बेचने के लिए मजबूर होना।
- नष्ट होते लघु उद्योग एवं हस्तशिल्प।
- जोतों का निरन्तर छोटे टुकड़ों में बंटते जाना।
- खेती के विकास में आयी गिरावट, कृषि उपजों का गिरता स्तर, श्रम की बरबादी, कृषि योग्य जमीन का विकास न होना।
- किसानों में खेती के प्रति बढ़ता असन्तोष एवं क्षमता का ह्रास।
- उर्वरकों की बढ़ती कीमतें एवं सिंचाई की समुचित व्यवस्था न होना।
- राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में खेती की स्थिति का तेजी से असंतुलित होते जाना, खेती पर आबादी की बेतहाशा बढ़ती निर्भरता और जनसंख्या के अनुपात में विकास का न हो पाना।
- किसानों के हाथ से जमीन के खिसकते जाने से खेतिहर सर्वहारा वर्ग में वृद्धि तथा समाप्त होते रोजगार के अवसरों का बोझ परोक्ष या अपरोक्ष रूप से खेती पर पड़ना।
- पूंजी एवं श्रम लागत के अनुपात में कृषि उत्पादों के मूल्य का निर्धारण न होना।
- दोषपूर्ण सरकारी ऋण वितरण प्रणाली।
- किसान विरोधी नई राष्ट्रीय कृषि नीति।
- उर्वरकों एवं कीटनाशकों की गुणवत्ता का जलवायु एवं मिट्टी के अनुरूप न होना।
- बैंकों द्वारा दिये जाने वाले ऋण में कटौती और दोषपूर्ण ऋण वितरण व्यवस्था।

संभावित प्रश्न

तमाम सरकारी प्रयासों के बावजूद किसानों द्वारा आत्महत्याएं बढ़ती जा रही हैं। क्या आप इस कथन से सहमत है कि इस सन्दर्भ में सरकारी प्रयासों के साथ-साथ व्यापक पैमाने पर सामाजिक अंकेषण की आवश्यकता है? इस कथन के पक्ष में अपना तर्क प्रस्तुत करें। (200 शब्द)

705, IInd Floor, Main Road, Dr. Mukherjee Nagar, New Delhi - 110009
Ph.: 011 - 27658013, 9868365322